Volume-2, No. II, Aug-2015, pp. 90-92

आध्यात्मिक शिक्षा के प्रणेता स्वामी विवेकानन्द

डॉ0 अल्का द्विवेदी, असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
शिक्षाशास्त्र विभाग,
कालीचरण पी0जी0 कालेज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश भारत।

सारांश

स्वामी जी कर्म जनित भिन्नता को तो मानते थे परन्तु उसके साथ–साथ आत्मिक एकता को अधिक महत्व देते थे। वे प्रत्येक मनुष्य को आत्मा का मन्दिर मानते थे, समान मानते थे। उन्होंने सभी मनुष्यों को अपना विकास करने के लिए समान अवसर एवं स्वतन्त्रता दी उन्होंने नारा दिया कि इस संसार में मानव सेवा से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं हो सकता। स्वामी जी के वेदान्त के इस व्यावहारिक दृष्टिकोण के कारण ही उनकी विचार धारा नव्य वेदान्त कही जाती है। तब मनुष्य की शिक्षा के सन्दर्भ में भी स्वामी जी की पहुँच व्यावहारिक होनी स्वाभाविक है। शिक्षा को उन्होंने मनुष्य के भौतिक, आध्यात्मिक विकास के साधन के रूप में स्वीकार किया है। आध्यात्मिकता को स्वामी जी मनुष्य जीवन का दूसरा और मुख्य पक्ष मानते थे। उनका स्पष्टीकरण था कि भौतिक विकास आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि में होना चाहिए और आध्यात्मिक इन दोनों प्रकार के विकास को एक साथ करने के पक्ष में थे। शिक्षा के यह कार्य प्रारम्भ से ही शुरू कर देना चाहिए। स्वामी जी द्वारा पोषित समाज सेवा, राष्ट्रीय एकता और विश्व बन्धुत्व वेदान्त का व्यावहारिक रूप ही है। इसके बाद मनुष्य को ज्ञान–योग, कर्म योग, भक्ति योग अथवा राज भोग किसी में भी प्रशिक्षित किया जाय जिससे वह आत्मानुभूति कर सके।

हमारे पूर्वजों का स्मरण सदा प्रेरणा का अखण्ड स्रोत रहा है। न केवल भारत अपितु विश्व की समस्त मानव जाति के लिए हमारी यह सांस्कृतिक सम्पदा शिक्षाप्रद, मार्गदर्शन एवं आकर्षण का विषय रही है। इन्हीं में से महान विभूति स्वामी विवेकानन्द का नाम अग्रणियों में रखा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। संसार के इतिहास में 12 जनवरी, 1863 ई0 का दिन स्वर्णिम अक्षरो में एक पुनीत पर्व के रूप में मुखरित है, क्योंकि इस दिन युगाचार्य विवेकानन्द ने जन्म लेकर माता भुवनेश्वरी देवी की गोद को सुशोभित किया था। अन्नप्राशन के समय पिता ने पुत्र का नाम नरेन्द्रनाथ रखा था[1]। यह नरेन्द्रनाथ भविष्य में विवेकानन्द के नाम से विश्व प्रसिद्ध हुआ।

बचपन से ही नरेन्द्रनाथ में 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' सदृश्य असाधारण प्रतिभा का आलोक रहा बुद्ध कुटुम्बीजन के मुख से सुन–सुन कर मुक्तबोध व्याकरण के सभी सूत्रों को बालक ने कंठस्थ कर लिया था। इस तरह बालक नरेन्द्रनाथ मेधावी, निर्भीक, रहस्य प्रिय, श्रुति एवं स्मृतिधर थे। जब कभी फुरसत मिलती पिता विश्वनाथ दत्त अपने पुत्र को हित वचन सुनाया करते थे। जब तक हम सत्य तथा धर्म का पालन करते हैं, किसी से डरने की जरूरत नहीं। धमकी के सामने कभी नही झुकना। आत्म–गौरव[2] को नही छोड़ना। स्वजाति के अभिमान के कारण अन्य जातियों से द्वेष नहीं करना। मानव कल्याण के लिए देशभक्ति आवश्यक है। विदेशी देश को दास बना सकते हैं, परन्तु सत्वपूर्ण प्राचीन संस्कृति का अपहरण नहीं कर सकते ऐसी सारयुक्त शिक्षा निरन्तर देने तथा पुत्र के कण्ठ की मधुरता पर मुग्ध हो जाते थे। भक्तिगीतों को गाते समय नरेन्द्र के चेहरे पर प्रकट होते दिव्य तेज को देखकर गद्गद् हो जाते थे। माता–पिता पर उन्हें अपार गौरव था। बालक नरेन्द्र माता–पिता को देवता के समान मानते थे, परन्तु उस गौरव भाव ने अपनी स्वतन्त्र विचार शक्ति को कभी कुंठित नहीं किया।

एक बार स्वामी विवेकानन्द के गुरू श्री रामकृष्ण परमहंस ने कहा था 'नरेन्द्र लोक शिक्षा देगा'। वास्तव में स्वामी विवेकानन्द भारतीय शिक्षा दर्शन में एक शिक्षक के रूप में आए। रामकृष्ण कहते थे ''खाली पेट धर्म नहीं होता''। स्वामी विवेकानन्द ने इस कथन का अनुभव किया। वे भारत की पहाड़ी जातियों के निकट सम्पर्क में आए। वहाँ उनको दरिद्रता दृष्टिगोचर हुई। उन्होंने बताया कि प्रथम तो व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। भूख–प्यास से त्रस्त मानव आध्यात्मिक विकास के बारे में क्या सोचेगा? संतुष्ट मनुष्य को ही ज्ञान व धर्म की ओर अग्रसर किया जा सकता है तभी चरित्र का गठन हो सकता है और तभी नैतिकता अपने यौवन को प्राप्त कर सकती है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि शिक्षा का प्रसार ही एकमात्र हल है। हमारी निरन्तर होती हुई आध्यात्मिक हानि की समस्या का। उन्होंने शिक्षा से आत्मविश्वास की दृढ़ता बताते हुए पूछा – कौन सी शक्ति है जिसके द्वारा जर्मन मजदूर, अंग्रेज मजदूर की जमी हुई जड़ों को हिलाने में समर्थ हो सका?

शिक्षा–शिक्षा केवल शिक्षा चाहिए। यूरोप के अनेक नगरों में भ्रमण करते समय जब स्वामी विवेकानन्द ने दरिद्र लोगों के आराम और शिक्षा को देखा तो उनकी आँखों

समक्ष हमारे अपने दरिद्र लोगों का चित्र आ गया और वे झर–झर रोने लगे। यह अन्तर भेद कैसे हो गया ? स्वामी विवेकानन्द को एक ही अन्तर सूझा व अशिक्षा के द्वारा। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति में आत्म विश्वास जगता है। शिक्षा की आज महती आवश्यकता है। ज्ञानी मनुष्य भावी तीन युगों तक का दृष्टिपान स्पष्ट कर सकता है। उन्हें आशा रही कि श्री रामकृष्ण देव के अविर्भाव के समय से प्राची का क्षितिज सूर्य की प्रातःकालीन किरणों से उद्भाषित होने लगा है और शीघ्र ही सम्पूर्ण देश मध्यकालीन सूर्य के प्रखर तेज से देदीप्यमान हो उठेगा, इसमें संदेह नहीं।

स्त्री शिक्षा पर बल हम चाहते हैं कि भारत की स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाए, जिससे वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्य को भली–भाँति निभा सके और संघमित्रा, लीला, अहिल्याबाई व मीराबाई आदि भारत की महान देवियों द्वारा चलाई गई परम्परा को आगे बढ़ा सके एवं वीर बन सके। भारत की स्त्रियाँ द्वारा चलाई गई परम्परा को आगे बढ़ा सके एवं वीर बन सकें। भारत की स्त्रियाँ पवित्रता व त्याग की मूर्ति है, क्योंकि उनके पास बल और शक्ति है।

इस प्रकार के उद्घोष करने वाले स्वामी विवेकानन्द ने निर्मल चित्त में अतीत, वर्तमान तथा भावी समाज का जो चित्र फलित हुआ था, उसका सनातन रूप काल के विपर्याय से भी नहीं हुआ। नारी समाज से सम्बंधित उक्तियाँ आज भी उसी समभाव से उज्जवल व प्रकाशित है। 'आमूल संस्कारक' के द्वारा वे समाज की जीवन शक्ति को प्रबुद्ध करना चाहते थे।

स्वामी जी के विचारों में शिक्षा का अर्थ केवल रटना नहीं था। उनके विचारों में शिक्षा का वास्तविक अर्थ है – ''व्यक्ति में कर्म की आकांक्षा एवं उसको कुशलतापूर्वक करने की पात्रता उत्पन्न करना'' वे चाहते थे कि भारत के प्रति अपने कर्तव्य भली–भाँति निभा सकें।

भारतीय नारी की शिक्षा उनके अनुसार धर्म, शिल्प, विज्ञान, गृहकार्य, स्वास्थ्य, पाक–कला, सीना–पिरोना आदि सब विषयों का स्थूल अर्थ सिखलाना था केवल पूजा पद्धति ही नहीं छात्राओं के सामने सीता, सावित्री, दमयन्ती, लीलावती, मीरा आदि के जीवन चरित्र कुमारियों को समझाकर उन्हें अपने जीवन को इसी प्रकार गढ़ने का उपदेश ही शिक्षा का उद्देश्य था। स्वामी जी स्त्री शिक्षा प्रसार के समय में लोगों को मनु महाराज का कथन याद दिलाते थे– 'यह नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता। यत्रोवास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तज्ञाफलाः किया।।' भारत में स्त्री शिक्षा की व्यापकता हेतु स्वामी विवेकानन्द बाग बाजार में बालिका विद्यालय की स्थापना की जिसका कार्यभार भगिनी निवेदिता को सौंपा। उनका मत था कि स्त्रियों के सम्बंध में हमारा हस्तक्षेप करने का अधिकार बस, उनको शिक्षा देने तक ही सीमित रहना चाहिए। उनमें ऐसी योग्यता लानी चाहिए जिससे वे अपनी समस्याओं को स्वयं ही अपने ढंग से झुलसा सके। हमारी भारतीय स्त्रियों की समस्याओं को हल करने में संसार के किसी भाग की स्त्रियों से पीछे नही है। हम चाहते हैं कि भारत की स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाए जिससे वे निर्भर होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्य को भली–भाँति निभा सकें। स्वामी जी ने न्यूयार्क में भाषण देते समय भी कहा था ''मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि भारतीय स्त्रियों को ऐसी ही बौद्धिक प्रगति हो।'' स्वामी जी ने स्त्रियों को सन्देश रूप में कहा–''मेरा तो इस देश की स्त्रियों को वही संदेश है जो पुरुषों के लिए है। भारत में और भारतीय धर्म में पूर्ण श्रद्धा व विश्वास रखो, तेजस्वी बनो अपने गौरवशाली भविष्य में विश्वास रखो'' स्त्रियाँ जब शिक्षित होंगी तभी तो उनकी सन्तान द्वारा देश का मुख उज्जवल होगा और देश में विद्या, ज्ञान, भक्ति जाग उठेगी।

विश्व धर्म सम्मेलन में 11 सितम्बर, 1883 को दुनिया के अनेक राष्ट्रों से हजारों प्रतिनिधि आये थे उनमें आयु में सबसे छोटे थे विवेकानन्द। जब उन्हें भाषण करने को कहा गया तब उनका हृदय कांपने लगा। जिह्वा सूख गई। अन्य लोगों के समान उन्होंने अपना भाषण लिखकर तैयार नहीं किया था। उन्होंने अध्यक्ष से कहा, सभी का भाषण होने के बाद अन्त में वे बोलेगें वह अन्तिम क्रम भी आ गया। माँ शारदा व रामकृष्ण को मन ही मन नमन कर उठ खड़े हुए। उनके मधुर कण्ठ से ''अमेरिका के भाईयों और बहनो!'' ये शब्द निकलते ही सभा भवन तालियों से गूँज उठा। दो–तीन मिनट तक तालियाँ बजती रहीं। अभी तक कोई भी इतना आत्मीयता से नहीं बोला था। सभा में शान्ति छाते ही उन्होंने अपना भाषण शुरू किया। कई अलग–अलग स्थानों से बहने वाली नदियाँ अन्त में समुद्र में ही मिलती हैं। उसी प्रकार अलग–अलग धर्म के जन्म के लिए मनुष्य अन्त में परमात्मा के पास पहुँचते हैं। कोई भी धर्म छोटा (निम्न) नहीं और कोई भी श्रेष्ठ (उच्च) नहीं। सभी जगहों पर पत्र–पत्रिकाओं में संस्था–संगठनों में उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा होती है। तब तक लोगों की धारणा थी कि भारत के लोग कम विद्वान हैं। मूढ़, आचार–विचार के हैं। स्वामी जी के सतत प्रयास ने अमेरिका में ही नहीं सभी प्रगतिशील राष्ट्रों में भारत को गौरव का स्थान प्राप्त हुआ।

महान भारतीय सन्त और चिन्तक स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन निश्चय ही अत्यन्त गौरवपूर्ण और प्रेरणादायक है। उनको इस बात में अडिग आस्था थी कि भीरु, म्लान और उदासीन व्यक्ति जीवन में कोई कार्य नही कर सकते हैं। कार्य वही व्यक्ति कर सकते हैं जो वीर, निर्भय और कर्मठ है। अतः प्रत्येक नर नारी के लिए स्वामी जी का सन्देश था – ''जीवन संग्राम में वीर बनो। कहो, सबसे कहो, कि तुम निर्भय हो। भय का

त्याग करो, क्योंकि भय मृत्यु है, भय पाप है, भय अधोलोक है, भय अधार्मिकता है, भय का जीवन में कोई स्थान नही है।''

स्वामी जी का कहना था कि– ''मनुष्य के जीवन में संघर्ष की प्रधानता होनी चाहिए जो कोई प्रकृति के विरुद्ध लड़ता है, उसमें चैतन्य का विकास होता है। जहाँ चेष्टा या पुरुषार्थ है, वही जीवन का चिन्ह और चेतना का प्रकाश है। स्वामी जी ने अतीत और वर्तमान, पूर्व और पश्चिम, स्वप्न और यर्थात की विरोधी महाशक्तियों में समन्वय स्थापित करने के लिए आजीवन अविराम संघर्ष किया और अन्त में इसी संघर्ष में अपने जीवन की आहुति दे दी।

धर्म–स्वामी जी के लिए एक समग्र जीवन दर्शन था वे उसे व्यापक दृष्टि से देखते थे उनका कथन था ''हमने धर्म का भली–भाँति न तो अध्ययन किया है और न ही उसे जीवन में उतारा है। हम धार्मिक न हो साम्प्रदायिक या अंधविश्वासी बन बैठे हैं। धर्म तो अविरोधी होता है। सबकी कल्याण कामना पर आधारित होता है।'' आवश्यकता इस बात की है कि हम सभी धर्मों के मूल उद्देश्य को समझे। वस्तुतः सभी धर्मो की एक मूल चेतना है–'मानव कल्याण'। अतः धार्मिक दृष्टि व्यापक, उदार तथा मानव कल्याण पर आधारित होनी चाहिए। सभी धर्म एक ही गन्तव्य पर पहुँचने के साधन हैं, वे विश्व कल्याण के विभिन्न मार्ग पर हैं।

बढ़ते हुए काम और जिम्मेदारी से स्वामी जी का स्वरूप बिगड़ने लगा। शिष्यों के आग्रह पर भी वे विश्रांति नही लेते थे। धीरे–धीरे वे अन्तर्मुखी बनते गये। वाह्य क्रियाएं बन्द होने पर भी आंतरिक क्रियाओं को विश्रांति नही थी। 04 जुलाई, 1902 को स्वामी जी ने नित्य के अनुसार अपना दैनिक कार्यक्रम समाप्त किया। रात को 9 बजे उन्हें थकावट मालुम हुई। हाथ–पैर कांपने लगे। फिर वे चिरनिन्द्रा में लीन हो गये। शिष्य व गुरु–बन्धु रोने लगे। मानो वे सब अनाथ हो गए हों, परन्तु उनकी वाणी आज भी अमर है। भारतीयों को आशीष दे रही है। भारत तथा विश्व के लिए उनका पवित्र जीवन एक आदर्श रहा है। उनके उदन्त विचार एक दैदीप्यमान आलोक स्तम्भ हैं और उनका नाम एक स्फूर्तिमान मंत्र है। आइए, हम अपने समस्त विवादों एवं आपसी कलह को समाप्त कर स्नेह की इस भव्य धारा को सर्वत्र प्रवाहित करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, पी0डी0 पाठक, अग्रवाल पब्लिकेशन।
2. शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रमन बिहारी लाल, रस्तोगी प्रकाशन।
3. 'शिक्षा के दार्शनिक आधार', डॉ0 रमा शुक्ला, आलोक प्रकाशन।
4. 'शिक्षा चिन्तन', त्रिमूर्ति संस्थान, कानपुर।
5. प्राइमरी शिक्षक, 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद'।